पॉल वर्गीज

बनाम

केरल राज्य और अन्य

10 अप्रेल, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत और एस.एच. कपाडिया, जे.जे.]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988

एस.19 - अभियोजन हेतु स्वीकृति - आवश्यकता - आरोपी को धारा 120 के तहत सजा दिलाना 319 सी.आर.पी.सी. अभियोजन की मंजूरी के बिना, यह मानते हुए कि एस.319 सी.आर.पी.सी. एस को ओवरराइड करता है। अधिनियम की धारा 19 - दोषसिद्धि के आदेश को पुनरीक्षण न्यायालय ने यह कहते हुए रद्द कर दिया कि 319 एस को ओवरराइड नहीं करता है। 19-अपील पर, आयोजित: एस.319 सी.आर.पी.सी. एस-19 पर वरीयता नहीं है। हालाँकि, लोक सेवकों के संबंध में अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामलों में, मंजूरी स्वचालित है-मंजूरी में मात्र त्रुटि, चूक या अनियमितता तब तक घातक नहीं है जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हो-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- एस.319।

धारा 19 अभियोजन की स्वीकृति - अन्तर्गत अधिनियम धारा 19 और धारा 197 सीआर.पी.सी.- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 197 के बीच अंतर।

हस्तगत प्रकरण में जांच अधिकारी ने आरोपी 1, आरोपी 2 और आरोपी 3 के खिलाफ मुकदमा चलाने की सिफारिश करते हुए की रिपोर्ट अभियोजन को प्रस्तुत की, जिसमें अभियोजन स्वीकृति थाने वाले प्राधिकारी ने केवल ए-1 के खिलाफ चलाने की स्वीकृति देने का फैसला किया और ए-2 व ए-3 के नाम हटा दिये गये। विचारण के

दौरान ए-2 और ए-3 की कथित अपराध में संलिप्तता दर्शाने वाली साक्ष्य सामग्री सामने आयी और अभियोजन अधिकारी ने धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत उक्त दोनों आरोपीगण के विरूद्ध मुकदमा चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त करने का निर्देश दिया। कानूनी सलाहकार ने यह रूख अपनाया की धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियोजन स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है । धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता का प्रावधान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 19 को ओवरराइड करता है और धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता की शक्तियों का प्रयोग करते हुए केवल धारा 19(4) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की शर्तों की पालना आवश्यक होती है। माननीय उच्च न्यायालय में विचारण न्यायालय के उक्त आदेश की पुनरीक्षण की गयी जिसमें माननीय उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय का उक्त दृष्टिकोण टिकाऊ नहीं था इसलिए वर्तमान अपील की गयी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त अपील का निपटारा करते हुए अभिनिर्धारित किया-

1. कि उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश का अवधारण करते हुए यह सही निष्कर्ष निकाला है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 पर धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता का अधिमान न्यायोचित नहीं है।

2.1. धारा 19(3) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में न्याय की विफलता और न्यायालय की राय पर जोर दिया गया है। धारा 19(4) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में न्याय की विफलता का यथासंभव उचित समय पर तर्क लेने पर जोर दिया गया है व उसमें स्पष्ट किया गया है कि अभियोजन स्वीकृति लेने में मात्र त्रुटि, चूक या अनियमितता को तब तक घातक नहीं माना जाता जब तक कि उसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता नहीं हुई हो। माननीय न्यायालय के संबंध में अपील की सुनवाई के

दौरान यह मुख्य बिन्दु रहा है कि वर्तमान परिदृश्य में क्या अभियोजन स्वीकृति आवश्यक है अथवा नहीं। अभियोजन स्वीकृति के संबंध में दो पहलू विद्यमान है यानि प्रथम क्षेत्राधिकार की कमी व दूसरा पूर्वाग्रह से संबंधित है।

राज्य पुलिस अधीक्षक बनाम टी वेंकटेश मूर्ति (2004) 7 एससीसी 763 पर भरोसा किया।

केन्द्रीय जाँच ब्यूरो बनाम वी.के. सहगल व अन्य (1999) 8 एससीसी 501 और प्रकाश सिंह बादल व अन्य बनाम पंजाब राज्य वगैरह (2007) 1 एससीसी 1 में प्रतिपादित सिद्धांतों पर विश्वास करते हुए सन्दर्भित किया।

2.2 माननीय न्यायालय ने धारा 197 दण्ड प्रक्रिया संहिता और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के संबंध में अभिनिर्धारित किया कि दोनों धाराएं विचारक रूप से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से संबंधित है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामलों में लोक सेवकों के संबंध में मंजूरी स्वचालित प्रकृति की होती है। इस प्रकार तथ्यात्मक पहलू का बहुत कम या महत्व नहीं होता है। इसके विपरीत धारा 197 दण्ड प्रक्रिया संहिता के मामले में यह पता लगाने के लिए कि मामले का संबंध और कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किये गये कृत्य के संबंधों पर विचार करना होता है, जबकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के मामले में ऐसी स्थिति नहीं है (पैरा संख्या 10) (1159-ई, एफ)

लालू प्रसाद उर्फ लालू प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य जरिए सीबीआई (एएचडी) पटना, (2007) 1 एससीसी 49 पर भरोसा किया।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 527/2007।

केरल उच्च न्यायालय एर्नाकुलम की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका 370/1999 निर्णय व आदेश दिनांक 19.01.06 स्वीकार किया गया।

माननीय न्यायालय ने अपीलकर्ता कॉलिन गोंसाल्वेस, कोमल और ज्योति मेंदीरत्ता की अपील स्वीकार करते हुए न्यायधिपति डॉ. अरिजीत पसायत द्वारा निर्णय सुनाया गया।

2. इस अपील में विद्वान एकल पीठ द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई है। केरल उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से दायर पुनरीक्षण को अनुमति दी, जो उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता था, उसने जांच आयुक्त और विशेष न्यायाधीश, त्रिचूर द्वारा पारित आदेश की शुद्धता पर सवाल उठाया था, जिसके द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 319 के संदर्भ में आरोपी के रूप में उन्हें पक्षकार बनाने की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। उक्त आदेश के द्वारा विचारण न्यायालय ने माना था कि संहिता की धारा 319 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 19 के प्रावधानों को ओवरराइड करती है और पूर्व प्रावधान के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए, एकमात्र शर्त जिन्हें पूरा करने की आवश्यकता है, वे धारा 319 की उपधारा (4) में ही निर्धारित हैं। उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि दिलावर सिंह बनाम परविंदर सिंह उर्फ इकबाल सिंह और अन्य मामले में इस न्यायालय ने जो कहा है, उसके मद्देनजर यह दृष्टिकोण टिकाऊ नहीं है। [2005] 12 एससीसी 709 तदनुसार आदेश को रद्द कर दिया गया।

3. अपील के समर्थन में, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही नहीं है क्योंकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (3) और (4) के प्रभाव को नजरअंदाज कर दिया गया है। यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि मंजूरी के अभाव में किसी भी तरह से न्याय की विफलता हुई। यह भी प्रस्तुत किया गया कि यह एक ऐसा मामला है जहां कोई मंजूरी आवश्यक नहीं थी क्योंकि कथित कार्य किसी आधिकारिक कर्तव्य का हिस्सा नहीं था। नोटिस की तामील के बावजूद प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

4. जैसा कि दिलावर सिंह के मामले (सुप्रा) में कहा गया है, को ध्यान में रखते हुए उच्च न्यायालय द्वारा सही माना गया है, विचारण न्यायालय को यह मानना उचित नहीं था कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 को धारा 19 पर प्राथमिकता/प्रधानता मिलनी चाहिए। अधिनियम और वह मामला समाप्त हो गया है। लेकिन विद्वान वकील श्री कॉलिन गोंसाल्वेस का दूसरा रुख विचार करने योग्य है।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 22.03.1999 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय ने दो व्यक्तियों को आरोपी 2 और 3 बनाया था। हमारा संबंध आरोपी नंबर 2 यानी प्रतिवादी नंबर 2 से है। हाई कोर्ट के आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी नंबर 3 की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उसके मामले पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। व्यक्तियों को अभियुक्त के रूप में पक्षकार बनाते समय ए-2 और ए-3, विचारण न्यायालय ने अतिरिक्त कानूनी सलाहकार को उन पर मुकदमा चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त करने का निर्देश दिया था। जब मामला 12.04.1999 को उठाया गया, तो सतर्कता कानूनी सलाहकार ने यह रुख अपनाया कि कोई मंजूरी आवश्यक नहीं थी। जांच अधिकारी ने आरोपी 2 व 3 के खिलाफ मुकदमा चलाने की सिफारिश करते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। लेकिन अनुसंधान करने वाले प्राधिकारी ने केवल ए-1 पर मुकदमा चलाने की मंजूरी देने का फैसला किया, और ए 2 और ए 3 के नाम हटा दिए गए। परीक्षण के दौरान, दो अन्य व्यक्तियों की कथित संलिप्तता दर्शाने वाली सामग्री सामने आई। ए-2 और ए-3 की स्थिति को देखते हुए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 का सहारा लिया गया। इस व्यापक प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया गया कि क्या मंजूरी बिल्कुल आवश्यक थी।

6. इस समय केंद्रीय जांच ब्यूरो बनाम वी. के. सहगल और सी बी आई अन्य, [1999] 8 एससीसी 501 पैरा 10 मामले में इस न्यायालय द्वारा कही गई बातों पर ध्यान देना उचित होगा। अन्य बातों के साथ, यह कहा गया था:

"अपील या पुनरीक्षण न्यायालय को किसी निष्कर्ष (या यहां तक कि दोषसिद्धि और सजा का आदेश) को उलटने से रोक दिया जाता है। अभियोजन की मंजूरी में कोई त्रुटि या अनियमितता, जब तक कि ऐसी त्रुटि या अनियमितता के कारण न्याय की विफलता न हुई हो। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या वैध मंजूरी की कमी वास्तव में न्याय की विफलता का कारण बनी, उपरोक्त उपधारा (2) में शामिल है यह विचार करना न्यायालय का कर्तव्य है कि क्या अभियुक्त ने मुकदमे के विचारण में उस मुद्दे पर कोई आपत्ति उठाई थी। भले ही उसने ऐसी कोई आपत्ति उठाई हो। प्रारंभिक चरण में यह निष्कर्ष निकालना मुश्किल है कि न्याय की विफलता हुई थी। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्णय लिया जाएगा। लेकिन जिस अभियुक्त ने इसे मुकदमे के प्रथम चरण में विचारण न्यायालय के समक्ष यह आपत्ति नहीं ली है वहाँ संभवतः अपीलीय अदालत में पहली बार की गई ऐसी याचिका को बरकरार नहीं रख सकता। कल्पनाथ राय बनाम राज्य जरिए सी बी आई (1997) 8 एस सी सी 732 में इस न्यायालय ने अनुच्छेद 29 में इस प्रकार देखा है:

"अनुच्छेद 29 संहिता की धारा 465 की उप-धारा (2) मंजूरी की अनियमितता के आधार पर सभी परीक्षणों को ख़राब करने के लिए कोई ब्लैंक दस्तावेज नहीं है, यदि आपत्ति पहली बार में ही उठाई गई थी। उप-धारा केवल इतना कहती है कि 'न्यायालय को इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि कार्यवाही में पहले चरण में आपत्ति उठाई गई है। यह केवल विचार करने योग्य विचारों में से एक है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यदि आपत्ति पहले चरण में उठाई गई थी, तो उसके लिए

यही कारण है कि मंजूरी में अनियमितता अभियोजन को खराब कर देगी और कार्यवाही को शून्य मुकदमे में बदल देगी।"

7. पुलिस इंस्पेक्टर बनाम टी. वेंकटेश मूर्ति द्वारा राज्य में, (2004) 7 एससीसी 763, में भी इसे इस प्रकार देखा गया है।

"14. वर्तमान मामले में न तो विचारण न्यायालय और न ही माननीय उच्च न्यायालय ने "न्याय की विफलता" के संबंध में प्रश्न से संबंधित उप-धारा (3) की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा है। केवल इसलिए कि कोई चूक, त्रुटि या अनियमितता है, के अनुसार मामले में मंजूरी जो कार्यवाही की वैधता को प्रभावित नहीं करती है जब तक कि अदालत इस संतुष्टि को दर्ज नहीं करती है कि किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है। यही समान तर्क अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय पर भी लागू होता है। प्रारंभिक चरण में इस मुद्दे को उठाते हुए उप-धारा (4) की आवश्यकता पर भी विचार नहीं किया गया है, दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय ने व्यावहारिक रूप से गैर-तर्कसंगत आदेश द्वारा, विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की हैं इसलिए उक्त आदेश बचाव योग्य नहीं। हम उक्त आदेशों को रद्द करते है। विचारण न्यायालय द्वारा धारा 19 की उप-धारा (3) के खंड (बी) और उप-धारा (4) के संदर्भ में निष्कर्षों पर विचार करना उचित होगा।"

8. जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (3) और (4) का प्रकाश सिंह बादल व अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2007) 1 एससीसी 1 में उल्लेख किया गया है कि धारा 19 की उपधारा (3) में जोर "न्याय की विफलता" पर है और वह भी "न्यायालय की राय में"। उपधारा (4) में उचित समय पर आपत्ति

उठाने पर जोर दिया गया है। गौरतलब है कि "न्याय की विफलता" मंजूरी में त्रुटि, चूक या अनियमितता से संबंधित है। इसलिए, मंजूरी में मात्र त्रुटि, चूक या अनियमितता को तब तक घातक नहीं माना जाता जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हुई हो या ऐसा न हुआ हो। धारा 19(1) प्रक्रिया का विषय है और अधिकार क्षेत्र की जड़ तक नहीं जाती है धारा 19 की उपधारा (3)(सी) निषेध की कठोरता को कम करती है। अधिनियम की धारा 19(2) के अनुरूप भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (बाद में इसे "पुराना अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 6(2) में, प्रश्न मंजूरी देने के अधिकार के बारे में संदेह से संबंधित है, न कि मंजूरी देने के अधिकार के बारे में संदेह से संबंधित है।

9. मंजूरी आवश्यक है या नहीं, इस पर तथ्यात्मक परिदृश्य पर विचार करना होगा। मंजूरी के सवाल में दो पहलू शामिल हैं यानी एक क्षेत्राधिकार की कथित कमी से संबंधित है और दूसरा पूर्वाग्रह से संबंधित है।

10. यह ध्यान दिया जा सकता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 और धारा 19 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम वैचारिक रूप से विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करता है। इस अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामलों में, लोक सेवकों के संबंध में मंजूरी स्वचालित प्रकृति की होती है और इस प्रकार तथ्यात्मक पहलुओं का बहुत कम या कोई महत्व नहीं होता है। इसके विपरीत, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 से संबंधित मामले में, यह पता लगाने के लिए मामले की बुनियाद और बुनियादी विशेषताओं पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या कथित कृत्य का कर्तव्यों के निर्वहन से कोई संबंध है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के मामले में स्थिति ऐसी नहीं है।

11. उपरोक्त पहलू को लालू प्रसाद @लालू प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य जरिए सी.बी.आई (एएचडी) पटना, (2007) 1 एस सी सी 49 में उजागर किया गया था।

12. तदनुसार अपील निस्तारित की जाती है ।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी डॉ. नरेन्द्र सिंह राठौड़ (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।